''धर्म एवं राजनीति'' : कौटिल्य अर्थशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में

अर्चना पाण्डेय[50]

प्राचीनकाल से ही राजनीति और धर्म को एक ही सिक्के के दो पहलू माना जाता रहा है। ऋग्वैदिककाल से लेकर धर्मशास्त्र के काल तक इसकी अक्षुण्य परम्परा दिखायी पड़ती है, किन्तु अर्थशास्त्र परम्परा में जिसकी प्राचीनतम कृति कौटिलीय अर्थशास्त्र ही है, हमें राज्य द्वारा किए गए जिन धार्मिक विधानों और कार्यो की जानकारी मिलती है, उनका उद्देश्य राज्य की सत्ता को सीमित करने की बजाय उसे सुदृढ़ करना है। धर्म क्या है और अधर्म क्या है, इस विषय में इस पुस्तक की मान्यताएं तीनों वेदों पर आधारित है। ऋक्, यजुष् तथा साम, इन तीनों वेदों का समन्वित नाम त्रयीवेद है और कौटिल्य के विचारों में त्रयीवेद में निरूपित धर्म चारों वर्णो और चारों आश्रमों को अपने-अपने धर्म या कर्त्तव्य में स्थिर रखता है। इस तरह यह एक मात्र धर्मग्रन्थ ही लोगों और राज्य का उपकारक है। कौटिल्य ने हर वर्ण के लोगों को स्वधर्म पर चलने का निर्देश दिया है और उसका कारण यह बताया है कि अपने धर्म का पालन करने से व्यक्ति स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति करता है और यदि वह स्वधर्म का उल्लंघन करता है तो वर्ण तथा कर्म में संकरता आ जाती है, जिससे लोक का नाश हो जाता है।[51] उन्होंने राजा का यह कर्त्तव्य बताया है कि वह प्रजा को धर्म मार्ग से भ्रष्ट न होने दे क्योंकि यदि मानव समाज धर्मोचित आचरण करेगा, चतुवर्गवर्णाश्रम पर आधारित रहेगा और तीनों वेदों की शिक्षा के अनुसार चलेगा तो वह समृद्ध होगा और उसका कभी नाश नहीं होगा।

अर्थशास्त्र में उस समय के विभिन्न प्रकार के धर्मो और सम्प्रदायों के तीर्थस्थानों, मन्दिरों और गर्भगृहों का वर्णन है परन्तु धार्मिक जीवन व्यतीत करने वाले ब्राह्मणों को सबसे अधिक महत्व प्रदान किया गया है। उन्हें मानवों में वही स्थान प्रदान किया गया है जो स्वर्ग में देवताओं का है। राजा का यह कर्तव्य बताया गया है कि वह मन्दिर, देवालय, ऋषि-आश्रम, वेदपाठी ब्राह्मण के संस्थान आदि के मामलों का स्वयं निरीक्षण करें और अपने धर्मस्थ अधिकारियों को यह आदेशित करें कि वे भी देव, ब्राह्मण, तपस्वी आदि का कार्य स्वयं ही विशेष रूप से सम्पादित करें।[52] कौटिल्य यज्ञ में पौरोहित्य करने और बदले में दान-दक्षिणा पाने के अधिकार को भी स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते है। ब्राह्मणों से राज्य के गहरे सम्बन्ध का संकेत पूजा-पाठ के विभिन्न नियमों तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों और वस्तुओं पर दी गई भारी छूट से भी मिलता हैं। कौटिलीय अर्थशास्त्र में इस बात का उल्लेख है कि नगर देवताओं या कुल देवताओं की स्थापना कब कहाँ और किस दिशा में होनी चाहिए, ताकि राज्य और राजा दोनों को सदैव विजय प्राप्त हो। यथा नगर के प्रत्येक दिशा के मुख्य द्वार पर उसके अधिष्ठाता देवता की स्थापना की जाए, जैसे कि उत्तर दिशा का देवता ब्रह्म, पूर्व दिशा का इन्द्र, दक्षिण का यम और पश्चिम दिशा का देवता सेनापति या कुमार होता है।[53] इसी प्रकार नगर सीमा से बाहर दो सौ गज की दूरी पर चैत्य, पुण्यस्थान, उपवन, सेतुबन्ध आदि स्थानों का निर्माण किया जाए और यथास्थान दिशा देवताओं की भी स्थापना की जाए।[54] कोषागारिक के कर्त्तव्यों से सम्बद्ध प्रकरण में यह कहा गया है कि तिमंजिले कोषागार में एक संरक्षक देवता प्रतिष्ठित होना चाहिए तथा सीताध्यक्ष के कार्यो का विवेचन करते हुए कौटिल्य का कहना है

50

51 स्वधर्मः स्वर्गायानन्त्याय च। तस्यातिक्रमे लोकः सङ्करादुच्छिद्येत। कौटिल्य अर्थशास्त्र-1, 2, 1

52 देवब्राह्मणतपस्विस्त्रीबालवृद्धव्याधितानामनाथानामनभिसरतां धर्मस्थाः कार्याणि कुर्युः। कौटिल्य अर्थशास्त्र-3, 20, 74-75

53 कोष्ठकालयेषु यथोद्देशं वास्तुदेवताः स्थापयेत्। ब्राह्मौन्द्राम्यसैनापत्यानि द्वाराणि। बहिः परिखायाः धनुश्शतावकृष्टाश्चैत्यपुण्यस्थानवनसेतुबन्धाः कार्याः, यथादिशं च दिग्देवताः। कौटिल्य अर्थशास्त्र-2, 4, 20

54 स्वदैवपूजनयुक्ताः कारयेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र-2, 4, 21

कि बुवाई के समय भगवान प्रजापति कश्यप को नमस्कार करने और सीता का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए एक मंत्र का उच्चारण किया जाना चाहिए।[55]

कौटिल्य अर्थशास्त्र में अग्नि, जल, बीमारी, दुर्भिक्ष, चूहे, व्याघ्र, सांप तथा राक्षस इन आठ प्रकार की दैवी विपत्तियों से बचने के लिए अनेक प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान बताये गये है यथा अग्नि से रक्षा के लिए पूर्णमासी आदि पर्व तिथियों पर बलि, होम और स्वास्तिवाचन द्वारा अग्नि की पूजा कराई जाय। अतिवृष्टि, बाढ़ आदि से बचने के लिए मंत्रविद् एवं अथर्ववेद के ज्ञाताओं द्वारा यज्ञ, जप, होम आदि का अनुष्ठान किया जाए, चूहे से रक्षा के लिए सिद्ध तपस्वियों द्वारा शान्तिकर्म करवाया जाए और पर्व तिथियों पर मूषक पूजा कराई जाय। इसी प्रकार राक्षसों का भय पैदा हो जाने पर तन्त्र और अथर्ववेद के ज्ञाता अभिचारक तथा मायायोग क्रियाओं द्वारा उनका प्रतिकार करें। कृष्ण चतुर्दशी तथा अष्टमी आदि पर्व तिथियों पर बलि के लिए बकरा लेकर श्मशान भूमि में राक्षसों की पूजा करायी जाय इत्यादि।[56] (4.3.434)

कौटिल्य के राज्य की विदेशनीति के निर्धारण में भी धर्म का महत्त्वपूर्ण स्थान है। विजित लोगों का शमन करने के लिए उनके धार्मिक रीति-रिवाजों और भावनाओं की ओर राजा को सहिष्णु-नीति बरतने को कहा गया है, साथ ही उसके लिए यह भी आवश्यक बताया गया है कि वह स्वयं उनके धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करें तथा ब्राह्मण समाज व्यवस्था के मुख्य सिद्धान्तों को लागू करें।[57]

कौटिल्य ने धर्म और धार्मिक संस्थाओं से जुड़े सभी स्थानों का विशेष ख्याल रखा है तथा देव प्रतिमा के रक्षार्थ अनेक नियम विहित किये हैं।[58] सर्वसाधारण द्वारा पूजित वृक्ष की रक्षा का भी विधान किया है ऐसे वृक्ष को गिराने वाले तथा सीमा निर्धारक वृक्षों या राजा के वन में उगाये गए वृक्षों को गिराने वाले को साधारण वृक्ष को गिराने वाले से दुगुने अर्थदंड का भागी बताया गया है।[59]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कौटिलीय राज्य की नीति धार्मिक रीति-रिवाजों से प्रभावित है और उसमें पुरोहितों, देवताओं, मंदिरों और पूज्य वृक्षों का विशेष ध्यान रखा गया है। परन्तु कौटिल्य राज्य का लक्ष्य धर्म-धार्मिकता की पवित्रता नहीं अपितु धर्म-स्थलों का उपयोग लौकिक उद्देश्यों की प्राप्ति करने के लिए था। इसलिए कौटिल्य ने राज्य शक्ति के विस्तार में बाधक धार्मिक रीति-रिवाजों का कौटिल्य ने त्याग किया है तथा राज्य की आन्तरिक और बाह्य स्थितियों को सुदृढ़ करने के लिए सामान्य लोगों की धार्मिक भावनाओं का दोहन करने का भी सुझाव दिया है। उनके अनुसार देवताध्यक्ष को किसी पवित्र स्थान में ''भूमि-गर्भ से देवता प्रकट हुआ'' इस प्रकार की खबर फैलाकर रात में देवता की एक बेदी बनवाकर और मेला लगवाकर दर्शनार्थियों से धन एकत्र करना चाहिए अथवा किसी सुरंग वाले कुएँ में तीन या पाँच सिर वाले बनावटी नाग को दिखाया जाए और उसे दिखाने के बदले दर्शकों से धन लिया जाय फिर उस धन से एकत्र करना चाहिए अथवा किसी सुरंग वाले कुएँ में तीन या पाँच सिर वाले बनावटी नाग को दिखाया जाए और उसे दिखाने के बदले दर्शकों से धन लिया जाय फिर उस धन से राजा की कोष वृद्धि करनी चाहिए।[60]

---

55 'प्रजापतये काश्यपाय देवाय नमः सदा।
सीता में ऋध्यतां देवी बीजेषु च धनेषु च;।। कौटिल्य अर्थशास्त्र-2, 24, 40

56 दैवान्यष्टौ महाभयानि-अग्निरूदकं व्याधिर्दुर्भिक्षं मूषिका व्यालाः सर्पा रक्षांसीति। तेभ्यो जनपदं रक्षेत्।
कौटिल्य अर्थशास्त्र-4, 3, 78

57 Aspect of Political Idias and Institutions in Ancient India by R.S. Sharma, P. 248

58 3.9.65

59 सीमवृक्षेषु चैत्येषु द्रमेष्वालक्षितेषु च।
त एव द्विगुणा दण्डाः कार्या राजवनेषु च। कौटिल्य अर्थशास्त्र-3, 19, 76

60 दैवतचैत्यं, सिद्धपुण्यस्थानभौमवादिकं वा रात्रावुत्थाप्य
यात्रासमाजाभ्यामीवेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र-5, 2, 90

कौटिल्य शत्रुओं से निपटने के लिए भी उनकी धार्मिक भावनाओं का सहारा लेने का सुझाव देते हैं उनके अनुसार जब शत्रु राजा देवपूजन अथवा देवयात्रा के लिए जाए तो इस अवसर पर कूट उपायों द्वारा शत्रु के विनाश का प्रयास करना चाहिए।[61] राजा को चाहिए कि जब शत्रु राजा देवगृह के अन्दर प्रवेश करे तभी उसके ऊपर यन्त्र छोड़कर गूढ़भित्ति और शिला गिरा दी जाए। अथवा देव-देह से बंधे हथियार उस पर गिरा दिया जाये या विष-मिश्रित पुष्प चूर्ण देवता के प्रसाद के रूप में शत्रु राजा को दिये जाये।[62] कौटिल्य शत्रु को फंसाने की उत्तम युक्ति यह बताते हैं कि सिद्धवेष गुप्तचर राजा को शत्रु राजा से मिला देने का प्रपंच रचे। जब राजा इस बात पर राजी हो जाए तो पूर्व निर्धारित सांकेतिक चिन्हों के द्वारा शत्रु राजा को बुलाकर फिर उस फंसाये गये शत्रु राजा को एकांत में मार देना चाहिए[63] अथवा शत्रु को सैनिक सहायता देने का वादा कर उसको उसके शत्रु से भिड़ा दे और बाद में उसकी सहायता न कर उसके शत्रु द्वारा ही उसको मरवा दें।[64]

धार्मिक आस्था के अतिरिक्त उस समय के लोगों का दुष्ट आत्माओं, जादू, तन्त्र-मन्त्र, सम्मोहिनी विद्या अभिचार या काला जादू में भी विश्वास था यद्यपि इन विद्याओं का प्रयोग निन्दित माना जाता था परन्तु राजा अपने राज्य के दुष्टों और राजद्रोहियों का दमन करने के लिए इन विद्याओं का प्रयोग कर सकता था। इसके अतिरिक्त कौटिल्य के अनुसार ज्योतिष, भविष्यवाणी और रहस्य विज्ञान को दैवीय और मानवीय विपत्तियों का प्रतिकार करने वाला होना चाहिए। प्रत्येक कार्य की सिद्धि के लिए धन और आवश्यक साधनों को ही नक्षत्र समझना चाहिए क्योंकि कार्य आरम्भ करने के पूर्व जो राजा नक्षत्र, तिथि, लग्न, मुहूर्त आदि की अनुकूलता को अधिक पूछता है वह कभी भी अपने अभीष्ट को प्राप्त नहीं कर सकता है।[65]

इस प्रकार स्पष्ट है कि कौटिल्य ने धर्म को लोगों के व्यक्तिगत विश्वास तक तथा पूजा-पाठ तक ही सीमित नही रखा। उन्होंने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में तो धर्म तथा धर्म द्वारा स्थापित नियमों को प्राथमिकता दी परन्तु राजा और राज्य के हित में छद्धर्म की व्यापक संभावनाएँ भी प्रस्तुत की। उन्होंने वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था पर आधारित तथा त्रयी, आन्वीक्षिकी, वार्ता और दण्डनीति से संचालित समाज की स्थापना करना अपना उद्देश्य माना है परन्तु साथ ही राज्य सत्ता की नींव को कमजोर बनाने वाले धार्मिक रीतिरिवाजों की न केवल उपेक्षा की है वरन् उनका दमन भी किया है।

---

61 दैवतेज्यायां यात्रायाममित्रस्य बहूनि पूज्यागमस्थानानिभक्तितः। तत्रास्य योगमुब्जयेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र-12, 5, 168-170

62 स्थानासनगमनभूमिषु वास्य गोमयप्रदेहेन गन्धोदकावसेकेन वा रसमतिचारयेत् पुष्पचूर्णोपहारेण वा। कौटिल्य अर्थशास्त्र-12, 5, 168-170

63 जनपदान्तेवासी सिद्धव्यंजनों वा राजानं शत्रुदर्शनाय योजयेत्। प्रतिपन्नं बिम्बं कृत्वा शत्रुमावाहयित्वा निरूद्धे देशे घातयेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र-3, 2, 172

64 दण्डबलव्यवहारेण वा शत्रुमुद्योज्य घातयेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र-3, 3, 173

65 नक्षत्रमतिपृच्छन्तं बालमर्थोऽतिवर्तते।
अर्थो ह्यर्थस्य नक्षत्रं किं करिष्यन्ति तारकाः।। कौटिल्य अर्थशास्त्र-9, 4, 142

वेदों में पर्यावरणीय चिन्तन

मनीषा कश्यप

कूट-शब्द -

वेद , पर्यावरण, प्राकृतिक पर्यावरण, सांस्कृतिक पर्यावरण, सामाजिक पर्यावरण

शोध-सार –

वेद सर्वज्ञानमय हैं ।यह वह पवित्रतम ज्ञानराशि है जिससे इष्ट-प्राप्ति और अनिष्ट-निवारण होता है- **इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थः वेदयति स वेदः** । वेदों में जल, वायु, भूमि, मेघ, वन-वनस्पतियों आदि की देवी-देवताओं के रूप में उपासना तथा सदैव इनकी सेवा करने की कामना की गई है । प्राकृतिक पर्यावरण के साथ ही वेदों में सांस्कृतिक तथा सामाजिक पर्यावरण के शुद्धिकरण से सम्बन्धित विचार भी प्राप्त होते हैं । प्रस्तुत शोध-पत्र में वेदों में निहित पर्यावरणीय चिन्तन पर प्रकाश डाला गया है तथा वर्तमान समाज में इसका महत्त्व प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है ।

वेद समस्त ज्ञान-विज्ञान का अक्षय कोष है ।भारतीय मनीषियों ने आदिकाल से ही पर्यावरण को विशेष महत्त्व दिया है ।पर्यावरण शब्द **परि** तथा **आङ्** उपसर्ग पूर्वक **वृङ्** धातु से निष्पन्न होता है । **वृङ्** धातु का अर्थ है- **आवृत् या आच्छादित करना** । अतः पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ है- **परित आवृणोति आच्छादयति यत् तत् पर्यावरणम्- अर्थात् जीव को चारों ओर से घेरने वाला आवरण** । वस्तुतः पर्यावरण बड़ा व्यापक शब्द है । पर्यावरण का तात्पर्य केवल प्राकृतिक घटकों से ही नहीं लगाया जाता अपितु पर्यावरण का तात्पर्य हमारे चारों ओर के आवरण एवं परिवेश से है जिससे हम घिरे रहते हैं और जो प्रत्यक्ष एवम् अप्रत्यक्ष रूप से हमें प्रभावित करता है ।

वैदिक ऋषि प्रकृति को सचेतन मानते थे ।वेदों में परम पुरुष परमेश्वर को सृष्टि उत्पादक देवता माना है[66] तथा सूर्य, पृथिवी, नदी, वायु, मेघ, वनस्पति आदि प्राकृतिक घटकों की देवी-देवताओं के रूप में स्तुति की गई है । वेद पर्यावरण संरक्षण हेतु जल, वायु, तथा, औषधियों के संरक्षण का निर्देश देते हैं-

त्रीणि छन्दांसि कवयो वियेतिरे पुरुषं दर्शतं विश्व चक्षणम् ।
आपो वाता औषधयम् तान्येकस्मिन् भुवनं अर्पितानि ।।[67]

वेदों में पर्जन्य (मेघ) की वर्षा करने वाले देवता के रूप में स्तुति की गई है ।[68] ऋग्वैदिक काल में प्रायः नदियों का जल ही व्यवहार में लाया जाता था । ऋग्वेद के नद्यः सूक्त में विश्वामित्र ऋषि ने विपाशा और शुतुद्री नदियों को

---

[66] स भूमि□सर्वतः स्पृत्वा.....। - शुक्लयजुर्वेद, 10.90.1

[67] अथर्ववेद, 18.1.17

[68] यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रते ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ।। - ऋग्वेद, 5.83.5